International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

बौद्ध धर्म के विकास की परिस्थितियाँ

राजीव कुमार

यू.जी.सी. नेट (इतिहास)

यू.जी.सी. नेट (शिक्षाशास्त्र)

बुद्ध के जीवन की संक्षिप्त रूप रेखा को जानना यहाँ उपयोगी होगा, न केवल कालांतर की ढेर सारी किंवदंतियों के नीचे दबे हुए मूल तथ्यों तक पहुँचने के लिए, बल्कि उनके युग की सामाजिक स्थिति को समझने के लिए भी। उनके जन्म का नाम गौतम था, बाद में उनके अनुयायिओं ने इसके साथ 'सिद्धार्थ' जोड़ दिया। शाक्य (सक्क) नामक एक छोटे अविभक्त क्षत्रिय कबीले में उनका जन्म हुआ था। ये शाक्य लोग आर्य परिवार की भाषा बोलते थे और अपने को आर्य कहते थे। पालि का ठीक यही सक्क शब्द ईसा पूर्व छठी सदी के हखामनि सम्राट दारयवहु (दारा या डेरियस) – प्रथम के शिलालेख के एलामी पाठ में भी देखने को मिलता है। एलामी कबीले पर उसकी विजय की स्मृति में यह लेख खुदवाया गया था। संभव है कि एक ही शब्द के इन दो उल्लेखों में कोई सीधा सम्बन्ध न हो, किन्तु शाक्यों का आर्य मूल विश्वसनीय हो जाता है। इस कबीले में कोई ब्राह्मण या जातीय वर्ग नहीं थे, न ही इस बात का कोई उल्लेख मिलता है कि शाक्य लोग उच्च वैदिक कर्मकाण्ड का पालन करते थे। शाक्य क्षत्रिय थे और आवश्यकता पड़ने पर शस्त्र धारण भी करते थे, पर वे खेती भी करते थे। सभी शाक्यों ने बुद्ध के पिता ने भी, हल चलाया है। इसके अलावा अपने क्षेत्र के बाहर उनके कुछ व्यापारी उपनिवेश (निगम) भी थे। शाक्यों के मुखिया का चुनाव बारी बारी से होता था। इसी कारण बाद में कथा गढ़ी गई कि बुद्ध राजकुमार थे और उन्होंने भव्य राजप्रासादों में सुख–भोग का जीवन बिताया। वस्तुतः मुख्या चुने जाने योग्य हर क्षत्रिय व्यक्ति 'राजन्य' कहलाता था। शाक्य आमतौर पर अपने सभी मामले स्वयं सँभालते थे, पर जीवन और मृत्यु का मामला उनके अधिकार में नहीं था। यह अधिकार उनके अधिनायक कोसलराज (उस समय पसेनदिः संस्कृत में प्रसेनजित) को था, जिसके आधिपत्य को शाक्यों ने स्वीकार कर लिया था। इस मामले में उनकी स्थिति मल्लों और लिच्छवियों– जैसे अधिक शक्तिशाली एवं पूर्ण स्वतन्त्र. आर्य कबीलों से भिन्न थी। इन आयुध जीवी कुलतन्त्रों पर, तत्कालीन यूनानी गणतंत्रों की भाँति, किसी बाह्य राजा का आधिपत्य नहीं था, और ये भी अपने मुखिया का चुनाव बारी–बारी से करते थे। बुद्ध की जन्मभूमि की जानकारी बहुमूल्यस सिद्ध होती और हमारे तिथिक्रम के लिए संदर्भ बिंदु बनती। उनकी मृत्यु 543 ई0 पू0 में हुई थी।[1] परन्तु जो उल्लेख मिलते हैं उनमें साठ वर्ष का अन्तर पाया जाता है। जिसका

कोई स्पष्टीकरण नहीं, सिवाय इसके कि भारत तथा एशिया की अन्य कई कौमें वर्षो की गणना 60 वर्ष के एक पूर्ण कालचक्र को आधार मानकर करती थीं। ई0पू0 483 की तिथि बाद की घटनाओं के तिथिक्रम को देखते हुए काफी संगत जान पड़ती है, और इसकी पुष्टि ताड़पत्र पर लिखित उस भारतीय हस्तलिपि से भी होती है जिस पर बुद्ध निर्वाण के बाद प्रत्येक वर्ष को एक–एक बिन्दु से अंकित किया गया है।[2] चीनी उल्लेखों में इस हस्तलिपि के भारत से कैण्टन पहुँचने की तिथि दी गई है।

आदिम और अत्यंत अविकसित, छोटा सा शाक्य क्षेत्र बस्ती और गोरखपुर जिलों में आजकल की भारत नेपाल सीमा के दोनों ओर था। शाक्यों के कोलिय पड़ोसियों ने बुद्ध के उपदेश सुने थे, और उन्होंने बुद्ध के दाह–संस्कार के बाद उनकी अस्थि धातुओं के एक भाग की मांग की थी। फिर भी, उनमें से अनेक उस समय कबीलाई जीवन की अधिक आदिम

अवस्था में थे, उनके कबीले का टोटेम कोल वृक्ष था। उनमें से कुछ लोग वृषभ टोटेम सम्बन्धित निजी अनुष्ठानों को भी करते थे। अतः कोलियों को गिनती आमतौर पर आदिवासियों में होती थी और उन्हें निम्न जाति का समझा जाता था। रोहिणी नदी के पानी को लेकर शाक्यों और कोलियों में झगड़ा था। आर्यो के युद्ध सम्बन्धी सभी नियमों की उपेक्षा कर के रोहिणी के पानी को विषाक्त करने में शाक्यों को कोई अनुताप नहीं हुआ। स्वयं बुद्ध का जन्म मातृदेवी लुंबिनी को समर्पित साल वृक्षों के कुंज में हुआ था। उनकी माता मायादेवी द्वारा समीप ही के शाक्यों के पवित्र पुष्कर (कृत्रिम कमलाताल) में स्नान करने के तुरन्त बाद। साल शाक्यों का टोटेम वृक्ष था, और इसलिए मायादेवी (जिनकी गौतम के जन्म के एक सप्ताह बाद ही मृत्यु हो गई थी) ने उस समय प्रचलित सभी अनुष्ठानों का वैसे ही पान किया जैसे कि सभी वर्गो की भारतीय स्त्रियाँ समूचे ऐतिहासिक युग में करती आई है। उस स्थान पर लुम्बिनी देवी की पूजा, बहुत कुछ उसी नाम (रूम्मिनदेई) से उन लोगों द्वारा आज भी होती है। जो बुद्ध को एकदम भूल चुके हैं।

बुद्धकालीन भारत की राजनीतिक स्थिति पर नजर डाले तो विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अर्थात देश में किसी केन्द्रीय या सार्वभौम सत्ता का अभाव दिखता है । उस समय सारा देश छोटी–छोटी इकाईयों में बँटा हुआ था, जो किसी प्रकार अपना विस्तार करने अथवा अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील थीं। दूसरे शब्दों में सारे देश में मत्स्यन्याय की स्थिति थी जब हर बड़ी मछली छोटी मछलियों को खा लेने के लिए बेचैन थी। इसलिए हम छठी– पाँचवी सदी ई0 पू0 को ' संघर्षरत जनपदों का युग कह सकते हैं। यह स्थिति ठीक उसी युग के चीन की स्थिति से तुलनीय है जिसे उस देश के इतिहास में भी सघर्ष शील राज्यों का युग' कहा जाता है।[3]

ईसा पूर्व छठी सदी में गंगा की घाटी में नए वर्गों के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता। एक वर्ग स्वतन्त्र खेतिहरों और कृषकों का था। '' कबीले के अन्तर्गत वैश्यों का जो नव वैदिक पशुचारी वर्ग था, उसका स्थान अब उन कृषकों ने लिया था जिनके लिए कबीले का कोई अस्तित्व नहीं रह गया था।[4] छठी शताब्दी ई0 पू0 में कृषक बस्तियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने लगती है। इस बात की पुष्टि साहित्यिक स्रोतों के साथ–साथ पुरातात्त्विक अवशेषों से भी होती है। उस चरण में प्रयुक्त होने वाले मृदभाण्ड, एन बी0पी0 कई पुरातत्विक स्थलों से प्राप्त होता है।[5] इन महत्वपूर्ण स्थलों के इर्द–गिर्द की बस्तियों के सर्वेक्षण से यह जानकारी प्राप्त होती है कि ढ़ेरों अन्य एन0बी0पी0 बस्तियों का विकास हो रहा था। हाल ही में वौली के निकटवर्ती ऐतिहासिक ग्राम्य स्थलों के अवशेषों के सर्वेक्षण से यह निश्चित सा प्रतीत होता है कि महत्वपूर्ण केन्द्रों के चारों तरफ कई बस्तियों का उदय हो रहा था।[6] वस्तुतः मध्य गंगा की घाटी में 500 से अधिक एन0बी0पी0 बस्तियाँ खोजी जा चुकी है।[7]

ई0पू0 छठी शताब्दी से पाँचवी शताब्दी ई0पू0 तक लौह प्रौद्योगिकी को इन परिवर्तनों से प्रत्यक्षतः कुछ भी लेना देना नहीं था। उत्तर वैदिक काल से कृषि में क्रमिक विकास के चलते अधिशेष के उत्पादन की सम्भावनाएँ बढ़ी जिसके फलस्वरूप छठी शताब्दी तक आते–आते शहरों का उदय हुआ । वस्तुतः अभी भी कृषि उत्पादन के क्षेत्र में लोहे की कोई भूमिका नहीं थी बल्कि यह प्रौद्योगिकी उत्तर–वैदिक काल की ही तरह अभी भी शासकों की मारक शक्ति बढ़ाकर वर्ण विभाजन की प्रक्रिया को मजबूती प्रदान कर रही थी।[8] न तो प्रारम्भिक शहरीकरण में इसकी कोई विशेष भूमिका भी थी और ना ही बौद्ध धर्म के उद्भव में।[9] अतः इस समय तक लोहे ने उसी वर्ग के स्वार्थो की पूर्ति की जिसने इस पर एकाधिकार कायम कर इसका इस्तेमाल समाज पर प्रभुत्व एवं उत्पादन की विविध पर नियन्त्रण कायम करने के लिए किया। परन्तु छठी शताब्दी के अन्त तक आते–आते यह प्रौद्योगिकी निर्भरता के बन्धन से बाहर आने की स्थिति में आ चुकी थी। जब उत्पादन के सम्बन्ध तीव्रता से परिवर्तित

होते हुए एक निश्चित रूप ग्रहण करने लगते हैं, जैसे कोई वर्ग सत्ता तक पहुँचकर वहाँ अपने को स्थापित कर लेता है। तब 'उत्पादन में विकास के लिए एक खास प्रेरणा होता है जो इस वर्ग की सम्पत्ति और शक्ति में वृद्धि करेगा।''[10] फलस्वरूप पाँचवी शताब्दी से लौह प्रौद्योगिकी शासकों की पकड़ से निकल कर उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगी।

लोहे के औजारों ने अब कृषि तन्त्र को विकसित करने में एक अहम भूमिका निभाई। 500 ई0 पू0 के आसपास जखेड़ा से प्राप्त लोहे के हल का फाल[11] तथा मध्य एन0बी0पी0 स्तर से कौशांबी[12] एवं अतरंजीखेंड़ा[13] से प्राप्त एक एक लोहे के हल का फाल इस बदलते परिदृश्य का परिचायक है।[14] यद्यपि प्रचुर मात्रा में नहीं फिर भी लौह कुल्हाड़ियाँ, हँसिए और छेनियाँ मध्य एन0वी0पी0 काल के पुरातात्विक स्थलों से अक्सरहाँ मिलते रहते हैं। परन्तु यह स्थिति शिल्प उद्योग एवं व्यवसाय के क्षेत्रों में किसी 'अभूतपूर्व विकास' की ओर संकेत नहीं करता।[15] यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि इसमें अधिकतर कृषि जनित लौह उपकरण गंगा की ऊपरी घाटी से प्राप्त हुए हैं और इस आधार पर मध्य गंगा घाटी[16] के लिए लौह उपकरणों की एक समानान्तर प्रयोग पद्धति की बात करना सही नहीं प्रतीत होता है।[17] साहित्य भी इस काल के प्रथम चरण में कृषि उत्पादन में वृहद पैमाने पर लौहे के इस्तेमाल का चित्र प्रेषित नहीं करता। 'अथनंगल ' (लोहे के हल का फाल) शब्द का जिक्र एक परवर्ती पाली ग्रंथ में मिलता है।[18] फाल (शायद लोहे का) शब्द का उल्लेख भी सुतनिपात के एक सुत के गद्य भूमिका वाले अंश में मिलता है।[19] फिर भी समकालीन ग्रन्थ इस धातु के विस्तृत परिचय एवं कृषि में भी इसके इस्तेमाल का चित्रण प्रस्तुत करते हैं।[20] लौह तकनीकी के इस विस्तृत प्रसार का आधार था सिंहभूम के समृद्ध लौह खदानों तक लोगों की पहुँच। सीमित स्वर पर इन खदानों का उपयोग पूर्ववर्ती काल से ही शुरू हो चुका था। तकरीबन 1000 ई0 पू0 के सन्दर्भ में सिहभूम के वारूडिह नामक स्थान से लोहे के चूर्ण एवं प्रचुर संख्या में नवपाषाणकालीन अवशेषों के साथ लोहे का एक 'हँसिया–सदृश' उपकरण प्राप्त हुआ है।[21] लेकिन अब बाहरी दुनिया के लोग भी इन खदानों तक पहुचने लगे। राजघाट (वाराणसी) से प्राप्त लोहे की वस्तुओं के लौह एवं अयस्क के अनुपातीय सम्बन्ध के विश्लेषण से यह संकेत मिलता है कि यहाँ मयूरभंज और सिंहभूम के लौह अयस्कों का इस्तेमाल हो रहा था।[22] इसके साथ–साथ पिटवाँ लोहे की जानकारी तथा भाथी के प्रयोग ने मध्य गंगा की घाटी में कृषि अर्थतन्त्र के विकास को गति प्रदान की।[23]

कृषि अर्थव्यवस्था में विकास के साथ–साथ कृषक समूह का आन्तरिक विभाजन अधिक स्पष्ट हो गया। ग्राम्य समुदाय में भू स्वामियों, जिनके अस्तित्व पर श्रीमती रीज डेविड्स बल देती है।[24] की जगह अब वैसे धनी व्यक्तियों ने ले ली जिनके पास प्रचुर संख्या में मवेशी और दास थे, फलतः इनका नियन्त्रण बड़े भू–भागों पर स्थापित हो गया। जातकों में दासों एवं भाड़े के मजजूरों की मदद से जोते जोने वाले 100 करीषा के जागीरों 80 करोड़ सम्पतिवाले भूपतियों तथा धनी ब्राह्मण भूवामियों के साथ साथ बड़े गवेशी समूहों ड़के मालिकों का उल्लेख मिलता है।[25] प्रारम्भिक कालीन ग्रन्थों में हम ग्रृहपतियों का वर्णन पाते हें जिनमें दान के रूप में विस्तृत कर मुक्त कृषि भूमि प्राप्त करने वाले धनी महाशाल ब्राह्मण भी थे और दासों तथा भाड़े के मजदूरों की मदद से खेती करने वाले धनी भूस्वामी भी।[26] ये धनी किसान सूदखोरी भी करते थे। कृषकों के दूसरे खण्ड अर्थात कस्सक[27] पर नियन्त्रण बनाए रखने में इन्हें सहूलियत हो रही थी। अतः साधारण किसान पर स्थानीय उच्च वर्ग की पकड़ बढ़ती चली गई[28] जो इस बात की ओर भी संकेत करता है कि धनी किसानों एवं शोषण की बाह्य शक्तियों के बीच ताल मेल बैठ चुका था।

गंगा घाटी का प्रदेश धान की खेती पर आधारित था क्योंकि यह क्षेत्र धान के अधिकांश उत्पादन के लिए भौगोलिक रूप से उपयुक्त और सहज था।[29] पहली बार बौद्ध ग्रन्थों

में धान के प्रतिरोपण का उल्लेख है[30] जो धान के गहन खेती का सूचक है। कृषि का विस्तार एवं धान की खेती ने एक जनसांख्यिकी क्रान्ति को जन्म दिया।[31] धान की पैदावार वाले क्षेत्रों एवं उच्च गर्भाधान के सम्पात के मध्य एक निश्चित सम्बन्ध की बात की गई है। वस्तुतः मड़गीला भात खिलाने से बच्चे से माँ का दूध जल्दी छुड़ाया जा सकता है जिससे माँ फिर से गर्भ धारण के लिए तैयार हो जाती है।[32] इसके साथ–साथ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि धान की खेती में श्रम की जरूरत अधिक होती है।[33] तत्कालीन कृषि व्यवस्था की इस वास्तविकता ने भी कृष्झि समुदाय के आन्तरिक विभाजन की प्रक्रिया को गति प्रदान की। इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे समझ उठ खड़ा होता है– कृषि कर्म के लिए किसके श्रम का शोषण हो रहा था?[34] बार–बार खुद हल जोतने, बीज बोने तथा फसल काटने वाले गहपतियों[35] के उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेक गहपति स्वयं अपनी भूमि पर खेती करते थे। पालि ग्रन्थों में खत्तियां, ब्राह्मणों एवं गहपतियों को महाशाल भी कहा गया है।[36] क्योंकि इस काल में कुछ राजकुमार, पुरोहित एवं गहपति बड़े भू–भागों के स्वामी बन चुके थे।[37] पालि ग्रन्थों में मगध के बड़े कृषि क्षेत्रों का उल्लेख है जिसका मालिक ब्राह्मण गहपति था[38] ये धनी गहपति उत्पादन में दूसरे के श्रम का इस्तेमाल कर रहे थे। कबीलाई समाज के विघटन, राज्य निर्माण के क्रम में निरन्तर हो रहे युद्ध मुद्रा प्रणाली के प्रचलन एवं कुछ हद तक बाजार पर आश्रित अर्थतन्त्र के विस्तार ने जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को जीवनयापन के लिए श्रम बेचने को बाध्य कर दिया।[39] मजे की बात है कि गौतम ने यह प्रावधान किया कि खेती, व्यापार और सूदखोरी ब्राह्मणों के लिए अमान्य नहीं हैं यदि वह स्वयं ये कार्य न करें[40] कबीलाई गणतन्त्रों में खत्तिय भूपति शारीरिक श्रम नहीं करते थे बल्कि दास कर्मकारों के श्रम का शोषण करते थे जो निम्नलिखित अभिव्यक्ति से स्पष्ट है: '' जमीन को जोतो, इसे सिंचित करों'' गहपति मेंदक के सम्बन्ध में उपलब्ध विवरण उत्पादन के आन्तिरिक संगठन में भाडे के श्रम की भूमिका को उजागर करता है। इस विवरण के अनुसार मेंदक की पत्नी भोजन बनाकर दासकम्मकारों को भोजन कराती थीं, उसका पुत्र उन्हें नगद वेतन देता था, पुत्र–वधू उन्हें जिन्स में वेतन देती थी, परिवार से जुड़ा दास खेतों को जोतता था और मेंदक पैदावार जमा करता था।[41] अतः मध्य गंगा की घाटी में ऐसे परिवारों के कारण जो पारिवारिक श्रम की क्षमता से कहीं अधिक साधन का उपभोग कर रहे थे, एक विशाल श्रमिक वर्ग का निर्माण हुआ।[42] समाज का यह हिस्सा अत्यधिक दरिद्रता एवं अनिश्चित अस्तित्व का पर्याय था और इस बात की पुष्टि बौद्ध ग्रन्थों में निरन्तर प्रयुक्त दलिद्द शब्द से होती है। दलिददों का वर्णन '' जरूरतमन्द, जिनके पास पर्याप्त पेय और भोजन का साधन नहीं है एवं जो पीठ ढकने में भी सक्षम नहीं है।''[43] के रूप में किया गया है। आन्तरिक विभाजन की वास्तविकता के महाभाग और दलिदद, सघन और अघन तथा सग्गत और दुग्गत जैसे प्रचलित पालि शब्दों के द्वारा परिभाषित किया गया है,[44] जिनमें हर पहला शब्द धनी तथा दूसरा शब्द निर्धन के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह कहना आवश्यक नहीं है कि इस तरह के दरिद्रीकरण का मूल कारण था जमीन एवं संसाधनों का नव–विकास उत्पादन की पद्धति में असमान बटवारी यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थों में राजतन्त्रों की कृषि अर्थव्यवस्थाओं के तहत गहपतियों और दास कम्मकारों तथा गणतन्त्रों में खतिय और दास–कम्मकारों के परस्पर विरोधों को रेखांकित किया है।[45] एक महत्वपूर्ण संदर्भ में दास कम्मकारों एवं उनके शाक्य स्वामियों के बीच एक सामाजिक तनाव का उल्लेख है जिसके दौरान दास कम्मकारों ने अपनी स्वामियों के औरतों पर आक्रमण कर अपना बदला लिया।[46] यह शोषितों के सीमित प्रतिरोध का द्योतक है, परन्तु शोषण के विरूद्ध प्रतिरोध का होना निश्चित है।

संदर्भ सूची

1. इनके अतिरिक्त कुछ अन्य मत भी रखे गये हैं। शार्पेण्टियर ने (कै0हि0इ0,पृ0 139, आई0 ए0, 1914, पृ0 118 अ0, 125 अ0 167 अ0) निवणि की तिथि 477–78 ई0 पू0 सुझाई है। एफ0 डब्ल्यू0 टॉमस ने 488 ई0 पू0 तथा दीवान बहादुर एल0डी0एस0 पिल्लै ने (वही, 1914 पृ0 197–204) अप्रैल 478 ई0पू0 । 'महावंश' में अशोक के अभिषेक और निर्माण के बीच 218 वर्ष का जो अन्तर बताया गया है, उसी व्याख्या करने के लिए शार्पेण्टियर ने यहाँ अशोक के अभिषेक से आशय उसकी कलिंग विजय या धर्म परिवर्तन से माना है । लेकिन यह एक स्पष्ट कथन के साथ अनावश्यक खींचतान है, यह विचार श्रीराम गोयल का है। देखें, प्राचीन भारत, पृ0 82 फ्लीट, जे0 आर0ए0एस0 1906 पृ0 984–6, 1909 पृ0 1 अ0 पृ0 323 अ0, गीगर, महावंश भू0पृ022अ0 चटर्जी , बी0सी0 लाहा वॉल्यूम प्रमथ पृ0 607, विक्रमासिंगे, चटर्जी, द्वारा उदघृत। फ्लीर के परिनिर्वाण की निश्चित तिथि 13 अक्टूबर 483 ई0 पू0 मानी है। और चटर्जी (डी0 आर0 भण्डारकर वॉल्यूम, पृ0 329–330) ने अप्रैल 26,483 ई0 पू0।
2. डब्ल्यू0 पायाओं (कैण्टोनी बिन्दु परम्परा के विषय में ताकायुसु से एक भूल हो गई थी।) जे0 ए0 ओ0 एस0 85, सितम्बर 1965 पृ0 341 अ0.
3. गायेल, श्रीराम विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, प्रथम, पृ0 588 ;मगध साम्राज्य का उदय, पृ0 21; प्राचीन भारत, पृ096–97
4. डी0डी0 कोसाम्बी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता पृ0 130
5. पार्थ सारथी, 'टाउन एण्ड इटस हिंटर लैण्डः कंटेक्सट ऑफ अर्ली वैशाली,' इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के 56 वें अधिवेशन में प्रस्तुत लेख, कलकत्ता, 1995
6. विजय कुमार ठाकुर,सोशल डायमेंशंस ऑफ टेऱाफोलाजी आयरन इन अर्ली इण्डिया, जानकी प्रकाशन, पटना, 1993, पृ0 31.
7. वही पृ0 26–30
8. वही पृ0 27–29
9. जे0 डी0 बरनाल, साइंस इन हिस्ट्री, जिल्द प्रथम, तृतीय संस्करण पेंगूइन बुक्स हरमनड्सवर्थ, 1965, पृ0 48.
10. इण्डियन आर्कियोलॉजी, 1974, त्र 75,; ए रिप्यू, पृ0 34
11. रामशरण शर्मा, मैटिरियल कल्चर एण्ड सोशल फॉरमेशंस इन एनशिऐंट इण्डिया, मैकमिलन, दिल्ली, 1983, पृ0 95
12. आर0 डी0 गौड़, एक्सकवेशंस एट अतरंजीखेडाः अर्ली सिविलाइजेशन ऑफ द अपर गंगा बेसिन, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1983 पृ0 425
13. गंगा सतलज द्रोणी में थिर रोपर से भी लोहे का एक फाल मिला है। (रामशरण शर्मा पूर्वोद्धृत, पृ0 25)
14. रामशरण शर्मा भौतिक संस्कृति के रूपान्तरण तथा उत्पादन में लोहे के प्रयोग में गुणात्मक परिवत्रन का सुझाव देते हैं, (पूर्वोद्धृत पृ0 95)
15. वही, पृ0 95
16. वही, पृ0 93–94
17. टी0 ब्लू हीज डेविड्स और विलयम स्टीड पालि– इंगलिश डिक्शनरी, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, 1993 देखे इतिहास भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् दिल्ली, अंक प्रथम भाग प्रथम पृ0 68
18. कोकलिक सुत इस फाल को जब सारा दिन गरम करके पानी में डाला जाता था तो सिसकारी की ध्वनि निकलती थी। यह विशेषता सभी धातुओं के फाल के साथ लागू होती है। सिर्फ लौह फाल के साथ नहीं।

19. रामशरण शर्मा, पूर्वोद्धृत पृ0 93.
20. दिलीप कुमार चक्रवर्ती, श्योरे तिफल इशूज इन इण्डियन आर्कियोलॉजी, मंशीराम मनोहरलाल दिल्ली 1988, पृ0 119.
21. एच0सी0 भारद्वाज, एसपेक्टस ऑफ एनशिऐंट इण्डियन टेञ्नोलाजी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1979,पृ0 397
22. अष्टाध्यायी में प्रयुक्त शब्द भाषा एवं प्रारम्भिक पालि साहित्य में उल्लिलिखत शब्द भस्ता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राक मौर्य काल में चमड़े की धौकनी का इस्तेमाल होता था। (रामशरण शर्मा प्रर्वोद्धत पृ0 96)
23. ई0 जे0 रैप्शन (स0) द कैम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्द प्रथम कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रीज, 1955, अध्याय घ्ध
24. विजय कुमार ठाकुर, चेंजिन्ग पैटर्नस ऑफ द फार्म एण्ड डिस्ट्रिव्यूशन ऑफ लैण्डेड इन प्रोपर्टी इन एनशिंएन्ट इण्डिया', इतिहास जिल्द घ्ध भाग 2, पृ0 42
25. रोमिला थापर, अध्यक्षीय अभिभाषण, प्रोसिडिंग्स ऑफ द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस 44 वाँ अधिवेशन बर्दवान, 1983 पृ0 6
26. दीघ निकाय घ .61 ; संयुक्त निकाय, घ 172; अंगुत्तर निकाय, घ .229 239 241
27. बौद्धायन धर्मशूत्र घ्घ्ध 2.1.4
28. आर0 एल0 सिंह (स0) इण्डिया ; ए रिजनल ज्योग्राफी, नेशलन ज्योग्रेफिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया, वाराणसी, 1994, पृ0 183–189
29. रामशरण शर्मा, मैटिरियल कल्चर एण्ड सोशल फॉरमेशंस इन एनशिएंट इण्डिया, मैकमिलन, दिल्ली, 1983, पृ0 97–98
30. दीघ निकाय, जिल्द द्वितीय (स0 भिक्खू जगदीश काश्यप) नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, 1959,पृ0 10.
31. ट्रेवर लिंग द बुद्ध पेंगूइस बुक्स, हरमंडसवर्थ, 1976, पृ0 50
32. कौलिन क्लार्क एवं मारग्रेट हासबेल, द इकॉनोमिक्स ऑफ सबसिस्टेंस एग्रीकल्चर, हारपर एण्ड रॉ, न्यूयार्क, 1994 पृ0 32
33. कृष्ण कुमार मण्डल ('ए नोट ऑन द विगिनिंग्स ऑफ पेजेंट मोड ऑफ प्रोडक्शन इन अर्ली इण्डिया, लगभग 600 ई0पू0 टू 300 बी0सी0 इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के 56वाँ अधिवेशन में प्रस्तुत लेख,कलकत्ता, 1995) ने इस कथनको उठाया है।
34. पचित्तीय, पृ0 241
35. अंगतुर निकाय, जिन्द घ (सं0 भिक्खू जगदीश काश्यप) नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, 1959 पृ0 239
36. रामशरण शर्मा शूद्रों का प्राचीन इतिहास, द्वितीय अंग्रेजी संस्करण,मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली 1980 पृ0 97
37. जातक तृतीय 293 चर्तुथ 279 कृष्ण कुमार मण्डल, (ए नोट ऑन द विगिनिंग्स आफ पेजेंट मोड ऑफ प्रोडक्शन इन अली इण्डिया, सी0 600 बी0सी0 टू0 300 बी0सी0 इण्डियन हिन्ट्री कांग्रेस के 56 वाँ अधिकवेशन में उल्लिखित ।
38. रामशरण शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास द्वितीय अंग्रेजी संस्करण, मोतीलाल वनारसीदास, दिल्ली 1989 पृ0 103
39. वही, पृ0 115
40. कृष्ण कुमार मण्डल, पूर्वोद्धत पृ0 5
41. रामशरण शर्मा, पूर्वोद्धत, पृ0 112

42. मज्झिम निकाय, जिल्द द्वितीय सं0 महापंडित राहुल सांस्कृत्यायान एवं वी0पी0 बापत) नव नालन्दा महाबिहार नालंदा 1958 पृ0 240
43. वही पृ0 240 248
44. उमा चक्रवर्ती, द सोशल डायमेंशन्स ऑफ अलीबुद्धिज्म आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1987 पृ0 87–89
45. पचित्तीय, पृ0 241; उमा चक्रवती, पूर्वो0 में उल्लिखित, पृ0 87–89
46. विजय कुमार ठाकुर, सोशल डायमेंशन्स ऑफ टेञ्राफोलॉजी, पृ0 32–36

.....